# भोजपुरी गीतों में सामाजिक चेतना और प्रतिरोध के स्वर

कुमार नरेन्द्र सिंह

आजकल गाए जा रहे अधिकतर भोजपुरी गीतों को सुनकर मन में वितृष्णा का भाव ही जग सकता है और जगता भी है। अश्लील, फूहड़ और द्विअर्थी गीतों का उबकाऊ चलन भोजपुरी गीतों और समाज के लिए लोगों के मन में हिक़ारत पैदा करता है। उच्छृंखलता उसकी पहचान बनती जा रही है। इसमें कोई शक नहीं कि आज भोजपुरी के बाज़ार का अप्रत्याशित विस्तार हुआ है। वह गांव-गलियों से निकल कर देश के बड़े-बड़े शहरों तो क्या, विदेश तक में अपने पांव पसार चुका है, लेकिन इसी अनुपात में उसका स्वभाव और स्वर मलीन भी हुआ है। उसका स्वभाव और सरोकार सिकड़ते जा रहे हैं। करुणा और विद्रोह की यह भाषा अश्लीलता की सारी सीमाएं लांघती जा रही है। आज भोजपुरी के गीत इतने पतित हो चुके हैं कि उसे सुना नहीं जा सकता। इन गीतों को सुनकर ऐसा लगता है, जैसे भोजपुरी में केवल ऐसे ही गीत गाए जाते रहे हैं। लेकिन यह सच नहीं है। भोजपुरी का मिज़ाज कभी अश्लील नहीं रहा, वह तो प्रेम और विद्रोह की भाषा रही है। हमेशा अन्याय और शोषण के ख़िलाफ़ तनकर खड़ी रही है। चाहे सामाजिक भेदभाव हो, ग़रीबों की पीड़ा हो, महिला-पुरुष विभेद हो या प्रतिरोध की बात हो, भोजपुरी गीत हमेशा अगुआ की क़तार में खड़े रहे हैं।

चूंकि सामयिकता भोजपुरी गीतों की ख़ास विशेषता रही है, इसलिए भोजपुरी भाषी लोग, समाज और देश से कटकर नहीं रह सकते, कभी रहे भी नहीं हैं। देश-दुनिया में ऐसी शायद ही कोई घटना हो, जिसे भोजपुरी ने नहीं गाया है। भोजपुरी गीतों में लास्य, उल्लास और सुरुचिपूर्ण रसिकता के साथ-साथ सामाजिक सरोकार, जन-चेतना और प्रतिरोध के स्वर भी प्रमुखता से मुखरित हैं।

भोजपुरी लोकगीतों ने अक्सर मेहनतकशों के संघर्ष की बुनियाद तैयार की है और आम जनता को अन्याय के विरुद्ध जगाया है, उन्हें गोलबंद किया है। 'केकरा से करी अरजिया हो सगरे बंटमार' या 'लड़े के बा किसान के लड़ैया, चल तुहुं लड़े बदे भइया' जैसे गीतों ने जनता को प्रतिरोध की ताकत दी है। लोकगीतों का यह चरित्र शोषकों के विरुद्ध रहा है। इनमें गहन दर्शन, विचार, संवेदनशीलता और जीवंतता भरी पड़ी है। बानगी देखिए –

> केकर ह ई देश के काटत बड़ुवे चानी
>
> केकर जोतल केकर बोअल के काटेला खेत
>
> केकर माई पुआ पकावे, केकर चीकन पेट।
>
> के मरि-मरि सोना उपजावे के बनि जाला दानी....केकर ह ई देश।
>
> ताजमहल केकर सिरजल ह, केकर ह ई ताज
>
> केकर ह ई माल खजाना, करतु आज के राज

पांकी-कादो में के बइठल, के सेवे रजधानी....केकर ह ई देश।

किसानों की दुर्दशा और पीड़ा की अभिव्यक्ति अनेक भोजपुरी गीतों में दिखाई देती है। बेचारे मज़दूर-किसान ग़रीबी में पैदा होते हैं और ग़रीबी में ही मर जाते हैं। दिन-रात परिश्रम करने के बावजूद उन्हें भर पेट खाना तक नसीब नहीं होता। खेती के लिए क़र्ज़ लेते हैं और क़र्ज़ चुकाते-चुकाते मर जाते हैं, लेकिन क़र्ज़ कभी चुकता नहीं है। निम्नलिखित गीत में उनकी पीड़ा किस तरह घनीभूत हुई है, देखिए –

फिकिरिया मरलसि जान, दुरदिनिवा कइलसि हरान।

करजा काढ़ि के खेती कइलीं, मरि गइल सब धान।

बैला बेंच के सहुआ के दिहलीं, रतिया कइलीं बिहान।

लइका-लइकी के लंगटे देखलीं, मेहरी के लुगरी पुरान।

सहुआ रजना चैन से सूते, हमरे नाहीं ठेकान

कबहुंक लपसी लाटा खइलीं, कबहुंक साझ-बिहान....फिकिरिया मरलसि जान।

एक भोजपुरी गीत में एक घास गढ़ने वाले की व्यथा को इतने मार्मिक शब्दों में बयान किया गया है कि सुनकर मन भर आता है। इस गीत को सुनकर किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की आंखें गीली हो जाएंगी –

भोरहीं गढ़ीला जा के टंड़िया प घास रे।

नाम घसगढ़ा पड़ल काम घसगढ़िया, कबहूं ना दिहले आराम घसगढ़िया

हंसुआ खुरुपिया रसरिया बा पास रे.....भोरही।

चुड़वे चबेनिया प काटीं दुपहरिया, सांझ ले उपास रहीं सेई ला बधरिया

ओनहीं सहीला घाम बरखा बतास रे....भोरहीं गढ़ीला।

होला गदबेरा त लउटी ला घरवा, कौड़ी भ गुड़ मिलल जीव के अहरवा

पनिये से पेट के मिटाई ला भुखास रे.....भोरहीं गढ़ीला।

चार घड़ी रात गइल मांड़- भात नूनवा, संझिए के संझिए मिलेला एक जुनवा

उहो कबो मिले नाहीं रही ला उपास रे.....भोरहीं गढ़ीला।

इसी तरह एक गरीब की बेटी, जो बकरी चराने के लिए अभिशप्त है, उसकी व्यथा कथा इस भोजपुरी गीत में बहुत ही मार्मिक रूप से व्यक्त हुई है –

गरीबवन के बेटिया चरावेली बकरिया, भोरहीं बधरिया के ओर।

अंचरा में बान्हि के फुटहा चबेनवा चली जाली फजिरे सबेर

मथवा प बतवा के टूटेला पहड़वा कहियो जे कइली अबेर।

कतहीं त नदिया सुखइली बरखवा में जेठवो में कतहीं अथाह

केकरो लोकनिया बा लाखन करोड़वा के केहू के भुलाइल बाटे हो राह।

ग़रीब जन के लिए जाड़ा किसी विपत्ति से कम नहीं होता। गर्म कपड़े की बात कौन करे, उनके पास तो इतना कपड़ा नहीं होता कि वे पूरी तरह से अपना तन भी ढंक सकें। उसमें भी यदि पछुआ हवा बहने लगे, तब तो जुल्म ही हो जाता है। देखिए इस गीत में उस स्थिति का कैसा दारुण बयान है –

जड़वा के रतिया गरीबवन के छतिया से पछेया बहेली बिछीमार।

फटली लुगरिया से तोपीं कइसे देहिया कि तोपलो प रहेला उघार।

उघरल देहिया प गीधवा के डिठिया से फूटि जाए अंखिया तोहार।

यहां देखने वाली बात यह भी है कि इस गीत में केवल ग़रीब स्त्री की स्थिति का वर्णन ही नहीं है, बल्कि उस नज़र के प्रति हिक़ारत भरा प्रतिकार भी है।

एक भोजपुरी गीत में फुटपाथ पर जीवनयापन करने वाले मज़लूमों को उठ खड़ा होने का आह्वान किया गया है। ग़रीबों को शोषकों के ख़िलाफ़ जागरूक करने के संदर्भ में यह गीत अद्‌वितीय है –

तनी जाग हो जवान फूटपाथ के।

अजबे समइया बा गजबे त हाल बा, जेही बिसकरमा से ही फटेहाल बा।

रचेला कंगूरवा से फूस खातिर छछनेला, तड़पेला एक मुठी भात के.....तनी जाग।

झमझम-झमझम गाव ता बदरवा, तोहरो मेहरिया के तारे ला अंचरवा

देखिले जुलूम बरसात के....तनी जाग।

ए हो हलुमान बल आपन इयाद कर

छोड़ि द भरोसा भगवान के....तनी जाग।

उल्लेखनीय है कि इस गीत में इस बात को लेकर असंतोष जाहिर किया गया है कि जो विश्वकर्मा यानी सृजन करने वाला है, वही फटेहाल है। समाज में आर्थिक असमानता को चुनौती देता यह गीत अविस्मरणीय है। इसमें जनता को हनुमान कहकर संबोधित किया गया है और उससे कहा जा रहा है कि वह अपने बल का स्मरण करे और सबसे बड़ी बात यह कही गयी है कि जनता अब भगवान पर भरोसा करना छोड़ दे।

भोजपुरी के अनेक गीतों में बेटा और बेटी के बीच क़ायम सामाजिक भेदभाव को उजागर किया गया है। न केवल उजागर किया गया है, बल्कि इसे व्यवहार को ग़लत भी बताया गया है। बेटा-बेटी के बीच सामाजिक भेदभाव को राहुल सांकृत्यायन ने अपने इस गीत में जिस उत्कृष्टता के साथ उकेरा है, वह अद्‌वितीय है –

एके माई बपवा से एक ही उदरवा में, दुनों के जनमवा भइले रे पुरुखवा।

पूत के जनमवा में नाच अउरी सोहर होला, बेटिया जनम पर सोग रे पुरुखवा।

तिरिया के मुअले त बतिये कवन कहीं, जिअते सवतिया ले आवे रे पुरुखवा।

ओहि रे कसुरवा मरदवा के किछु नाहीं, तिरिया के भकसी झोंकावे रे पुरुखवा।

इसी भेदभाव को एक पारंपरिक सोहर में मार्मिक रूप से उकेरा गया है। इस सोहर में एक बेटी के जन्म पर पूरा घर बेटी जनने वाली स्त्री के साथ किस तरह का व्यवहार करता है, वह परेशान करने वाला है। बाक़ी लोगों की बात कौन करे, बेटी के जन्म की बात जानकर स्वयं उसके पति की हंसी भी गायब हो जाती है। ज़रा देखिए इस सोहर को –

जेठ बैसाख के महीनवा त पुरइन लहसी गइली हो

ए ललना ताही तर बेटिया जनम लिहली पियवा निहंसी भइले हो।

काई ओढ़न काई डांसन काई चउरा पंथ पड़े हो, ए ललना काई लकड़ी जरेला सउरिया

त सउरी भेयावन लागे हो।

लूगरी ओढ़न लूगरी डांसन कोदउवा चउरा पंथ पड़े हो, ए ललना रेंड़िया के लकड़ी जरेला

त सउरी भेयावन लागे हो।

लेकिन जब बेटा पैदा होता है, तो सबका व्यवहार बदल जाता है। बेटा जनने वाली स्त्री को सभी चीजें उत्तम गुणवत्ता वाली दी जाती हैं। इसी सोहर में आगे उसका बयान है –

जेठ बैसाख के महीनवा त पुरइन लहसी गइली हो, ए ललना ताही तर बेटवा जनम लिहले

पियवा हुलसी गइले हो।

बेटा जनने वाली स्त्री को पहनने के लिए लूगरी नहीं दी जाती है, बल्कि –

चुनरी ओढ़न चुनरी डांसन त बासमती चउरा के पंथ पड़े हो

ए ललना चंदन लकड़ी जरेला सोइरिया त सोइरी सोहावन लागे हो।

इसी तरह एक अन्य सोहर में सामंतवाद पर चोट की गयी है। इस सोहर में एक हिरण-हिरणी के जोड़े के माध्यम से बात कही गयी है। राजा दशरथ के सिपाही हिरण का शिकार कर लेते हैं। हिरणी फरियाद लेकर कौशल्या के पास जाती है और कहती है –

मचिया बइठल रानी कोसिला त हिरनी अरज करे हो

ए ललना मसुआ तो सिंझिहें रसोइया खलड़िया मोहे देती नु हो।

तो कौशल्या हिरणी को जवाब देती हैं –

जाहु-जाहु हिरनी तु जाहु खलड़िया नाहीं देइब हो

ए ललना खलड़ी के खंजड़ी बनइबो, त राम मोरा खेलिहन हो।

हिरणी निराश होकर वन में चली जाती है और राम खंजड़ी से खेलने लगते हैं। हिरणी के कानों में जब खंजड़ी की आवाज़ पड़ती है, तो उसे कैसा महसूस होता है और तब वह क्या चाहती है, ज़रा देखिए –

जब-जब बाजे उ खंजड़िया सबद सुनि अहंकई हो

ए ललना कब ले इ फूटिहें खंजड़िया ते मनवा में धीर धरीं हो।

यहां इस सोहर में पूरे सामंतवादी व्यवस्था पर चोट की गयी है। हिरणी जानती है कि उसका हिरण अब लौट कर आनेवाला नहीं है, लेकिन उसे तो चैन तभी पड़ेगा, जब वह व्यवस्था ही नष्ट हो जाए, जिसमें उसका हिरण छीन लिया गया है और उसके चमड़े का खिलौना बनाकर कोई खेल रहा है। यही कारण है कि हिरणी खंजड़ी फूटने की कामना करती है।

नारी स्वाभिमान को स्वर देता भोजपुरी का यह गीत सचमुच बेमिसाल है। इस गीत में सीता राम का मुंह देखने के लिए भी तैयार नहीं हैं –

अइसने पुरुखवा के मुंह नाहीं देखबो, जिनि मोहे देले बनवास रे

फटि जइती धरती अलोप होई जइतीं, अब ना देखबि संसार रे।

शोषण से परेशान एक स्त्री कहती है –

माई रे माई बिहान कोई कहिया

भेड़ियन से खाली सिवान होई कहिया।

हमरा के कागज के नइया थमाई, अपने आकाशे जहजिया उड़ाई

अंतर के जंतर गियान होई कहिया......माई रे माई।

दहेज प्रथा पर भी भोजपुरी गीतों में ज़बर्दस्त चोट की गयी है। एक बेटी पैसा नहीं होने के चलते अपने पिता द्वारा वर खोजने में बार-बार असफल होते देखकर कहती है कि धनी घर-वर देखने की कोई ज़रूरत नहीं है, इसलिए आप वैसा वर खोजिए, जैसा मैं कहती हूं –

जेकरे ना होई बाबा हाथी से घोड़ा, नाहीं होई मोहर पचास

जेकरे ना होइहें बाबा नौ लाख तीलक, से बर हेरी हरवाह।

हर जोती आवे कुदार गोड़ियावे, बइठे मुंह लटकाई

ओनहीं के तीलक चढ़इह मोरे बाबा, उ नाहीं तीलक लेई।

एक बेटी तो दहेज के चलते विवाह नहीं होने से आत्महत्या का मन बना लेती है। वह अपने भाभी से कहती है –

रचि-रचि कई द सिंगार मोरी भउजी, कि अइले दुअरिया कहार

अबहीं त बाड़ू कुंआर मोरी ननदी, कहवां से अइले कहांर।

बेटी आत्महत्या के पहले अपनी भाभी से कहती है –

बपई से कहि दिह पगरी बचइहें, माई से भेंट अंकवार

बिरना से कहि द लवटी घर आई, नाहीं अप बहिनी तोहार।

दहेज प्रथा हमारे समाज के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है। दहेज के ख़िलाफ़ कानून बन जाने के बावजूद इसका प्रचलन न केवल क़ायम है, बल्कि बढ़ता ही जा रहा है। दहेज लेना समाज में प्रतिष्ठा की बात समझी जाती है। न जाने कितनी महिलाएं दहेज के लिए मौत के घाट उतार दी जाती हैं। अख़बारों में प्राय : ऐसी ख़बरें हमें पढ़ने को मिलती रहती हैं। एक बाप अपनी बेटी को जला दिए जाने के बाद पछताते हुए कहता है –

जनतीं की जारल जइबू आग में दहेज के

पाप नाहीं करतीं ए बेटी ससुरा में भेज के।

भोजपुरी को छोड़कर शायद ही कोई बोली हो, जिसमें भ्रूण-हत्या के बारे में गीत लिखा गया हो। हमारे देश में हजारों बेटियां गर्भ में ही मार दी जाती हैं। कोख कत्लगाह बन गया है। बेटे की चाहत इतनी प्रबल है कि बेटी को गर्भ में मारने में भी गुरेज़ नहीं होता है। देखिए यह गीत, जिसमें एक अजन्मा बेटी अपनी मां से कहती है –

मुंहवो ना देखलीं तोर ए माई, देखलीं ना दुनिया जहानवा

कवना करनवा तू मरलू ए माई, गरभे में हमार जानवा।

हमारे देश में आज भी पढ़ी-लिखी महिलाओं की संख्या बहुत कम है। ग़रीब और दलित तबक़े की स्त्रियों के लिए आज भी पढ़ना करिया अक्षर भैंस बराबर ही है। लेकिन अब वे अनपढ़ नहीं रहना चाहतीं। अब वे श्रम करते हुए पढ़ने की चाहत रखती हैं। वे नहीं चाहतीं कि नहीं पढ़ी-लिखी होने के कारण उन्हें कोई ठग ले। वे बैंक और पोस्ट ऑफिस का काम स्वयं करना चाहती हैं और बीडीओ, कलक्टर से खुद मामला सुलझाना चाहती हैं। इस संदर्भ में यह गीत अत्यंत उल्लेखनीय जान पड़ता है –

चल ए सजनी हमनियों पढ़ेला।

खेतवा में दिन भर खुरुपिया चलाइब, आरे सिलेटवा प पिलसिन घुमाइब

करिया अछ्छर जब भैंसी ना लगिहें, हमनी के तब कोई ठगवा न ठगिहें

सीख लेब आपन-आपन दसखत करेला।

अपने से चिट्ठी लिखे के पढ़े के, बैंक पोस्ट आफिस में फारम भरे के

बीडियो कलट्टर से सलटब झमेला.......चल ए सजनी हमनियों पढ़ेला।

पढ़ाई की यह चिंता गोरख पांडेय के इस गीत में भी अभिव्यक्त हुई है –

गुलमिया अब नाहीं बजइबो, अजदिया हमरा के भावेले।

…………………………

दिनवा खदनिया सोना निकललीं, रतिया लगवलीं अंगूठा

सारी जिनगिया करजे में डूबल कइल हिसबवा झूठा

जिनगिया अब हम नाहीं डुबइबो अछुरिया हमरा के भावेले।

दुर्भाग्य है कि आज भोजपुरी गीतों की यह शानदार परंपरा और विरासत अश्लीलता के कूड़ेदान में तिरोहित हो रही है। आश्चर्य है कि इसकी चिंता भोजपुरी समाज के पढ़ुआ लोगों को भी नहीं है। वे इस परिघटना को आंखें मूंदकर देख रहे हैं। बाजार ने भोजपुरी गीतों की मिठास और सुरुचि को फूहड़ता को कूड़े में डाल दिया है, जिससे केवल दुर्गन्ध आती है।